सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

वर्ष : 56 : अंक : 07
अक्टूबर 2023

प्रकाशन तिथि : 01-10-2023
मूल्य – एक प्रति: 22/–, वार्षिक : 230/–

अमृतकण

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिस्स्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशुः बुद्धि पर्यवतिष्ठते।।

और इस बुद्धि प्रसाद को पा करके उस साधक के सभी दुःख हट जाते हैं एवम् प्रसन्न चित्तता से बहुत शीघ्र ही बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है।

◆ ◆ ◆

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य च चायुक्तस्य भावना
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।

जिस व्यक्ति का अपने पर कोई नियंत्रण नहीं है वह अयुक्त नहीं है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित नहीं हो सकती और न ही उसकी भावना उत्कृष्ट हो सकती है जिसकी भावना निष्ठा नहीं उसको शान्ति कहाँ जिसको शान्ति नहीं उसको शाश्वत सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

◆ ◆ ◆

अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे में अनन्य चित से स्थित हुआ। सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है। उस निरन्तर मेरे में युक्त हुये योगी के लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् सहज को प्राप्त हो जाता हूँ।

◆ ◆ ◆

माम वेत्य पुर्नजन्म दुःखालयमशाश्वतम्
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमा गताः।।

वे परम सिद्धि को प्राप्त हुये महात्माजन मेरे को प्राप्त होकर, दुख के स्थान रूप क्षण भंगुर पुनर्जन्म को नही प्राप्त होते है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 अक्टूबर 2023 अंक : 07

विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरः

आशा नाम नदी मनोरथ जला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तङ्गचिन्तातटी
तस्याःपारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।

आशा नाम की एक नदी है मनोरथरूपी जल जिसमें भरा है, तृष्णा जिसकी लहरें हैं, रागद्वेष जिसके मगर और घड़ियाल हैं, अपने अनुकूल और प्रतिकूल होने वाले पदार्थों के निर्णय करने की विचार धारा रूपी वितर्क हो

■■■

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 6
3. श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह* 11
4. भगवान् कृष्ण का वृन्दावन- *श्री कृष्ण कुमार* 14
5. गुरु-कृपा की महिमा- *श्री अन्तूराम यादव* 17
6. गृहस्थ के लिए आवश्यक पंच महायज्ञों का विधान- *श्री हीरालाल जी* 21
7. नौलि- *श्री सूरजप्रकाश शर्मा* 25
8. चण्डीगढ़ में योग प्रचार और श्री गुरु-कृपा की अलौकिक घटनाएं 31
9. दुःखालय शाश्वतम्- *श्री सुरेन्द्रबहादुर एम.ए.* 34
10. सुदीर्घ-जीवी और स्वस्थ रहने के उपाय- *श्री जी.एल. मेहरा* 39

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1500.00

विशेष लेख

किं कर्म किमकर्मेति ?

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में मनुष्य ही नहीं किन्तु प्राणी मात्र चाहे वह जलचर, नभचर, थलचर कोई भी क्यों न हो, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कर्म–पाश से बँधा रहता है। इच्छा या अनिच्छा से जीवन–यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एवं जीवन के व्यवहार हेतु उसे कर्म करना ही पड़ता है, उसकी यह कर्म शृंखला का परिणाम ही उसके वर्तमान जीवन से इतर भावी जीवन का अथवा यों समझिए कि उसके सद्–असद् योनि में जन्म लेने का कारण बनता है। 'योगदर्शन' में महर्षि पतंजलि ने प्राणी के साथ जन्म–जन्मान्तर से चली आ रही इस कर्म–शृंखला के परिणाम रूप को ही संस्कार की संज्ञा दी है और यही संस्कार प्राणी की प्रारब्ध के निर्माता बनकर उसे जाति, आयु तथा भोग रूप फल प्रदान किया करते हैं। इसीलिए संसार में यह उक्ति प्रचलित है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। जैसे कर्म वह करेगा वैसा ही उसका प्रारब्ध अथवा भाग्य उसे जाति, आयु और भोग प्रदान करता रहेगा। प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी शास्त्रोक्त उक्ति का समर्थन निम्न पंक्तियों में किया है–

कोउ न किहु सुख दुखकर दाता।
निज कृत कर्म भोग फलदाता।।

जब यह निश्चित है कि प्रत्येक प्राणी के सुख–दुःख का कारण उसके अपने किये हुए कर्म ही होते हैं, तब विवेकशील मनुष्य का क्या यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह जो भी कर्म करे उसे अपने और पराये हिताहित का विचार करके करे। यह सोच समझ कर करे कि उसका कार्य और कार्य–जन्य व्यवहार शास्त्रानुमोदित है या नहीं। साथ ही वह यह भी विचार करे कि उसके कर्म लोक के लिए और उसकी अपनी आत्मा के लिए कल्याणकर हैं या नहीं। यदि इन कुछ कसौटियों पर कसकर मनुष्य अपने कार्य का मार्ग निश्चित करेगा तो निश्चय ही वह शास्त्र और मानव–मर्यादा के अनुकूल होगा। देश, समाज और व्यक्ति के हित में किये जाने वाले कार्य ही–जिन्हें धर्म या कर्त्तव्य समझ कर किया जाता है–पुण्य कर्मों की परिभाषा में आते हैं, तथा फलाकांक्षा रहित इन कर्मों को ही श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म की संज्ञा दी गई है। फल की कामना

से रहित जो कर्म किये जाते हैं वे मनुष्य के बन्धन के कारण नहीं होते। जगदात्मा ने इसी हेतु हमें यह निश्चयात्मक सत्परामर्श भगवद्गीता में दिया है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

(गीता 2/47)

अर्थात् हे अर्जुन तेरा अधिकार केवल कर्म के अनुष्ठान में है फल में कदापि नहीं। इसलिए कर्मफल की आसक्ति वाला तू मत बन, तथा कर्म न करने की प्रवृत्ति भी तुझमें नहीं होनी चाहिए।

बड़ी स्पष्टता से योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन को निमित्त बनाकर जगत को यह सन्देश भी दिया है कि कर्मफल की वासना न करने का यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य कर्म से ही विरत हो जाये। कर्त्तव्यारूढ़ तो उसे सदैव रहना ही चाहिए। अकर्मण्य बन जाने से तो जीवन की सारी व्यवस्था ही नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगी। श्रेयपथ पर बढ़ने की ओर समाधि अथवा मुक्ति प्राप्ति की योजना का फिर अर्थ ही कुछ न रहेगा। जगदात्मा ने अपने इसी अभिप्राय को आगे और भी अधिक स्पष्टता से इस प्रकार कहा है–

योगस्थ कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

(गीता 2/48)

अर्थात् हे धनंजय! योग में स्थित हुआ तू आसक्ति (फलासक्ति) को छोड़कर–सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर सम–भाव से कर्मों को कर क्योंकि कर्मों को समता से करना ही योग है।

भगवान का यह सन्देश विशेष रूप से योगियों के लिए ही है। कर्म के सम्पादन में यदि सिद्धि–असिद्धि पर कर्ता का ध्यान चला गया तब ऐसी दशा में न तो सम्यक् रूपेण कर्म का समापन हो पाता है और न ऐसा कर्म, निष्काम कर्म की उस परिभाषा में ही आ पाता है जिसके आधार पर मनुष्य जन्म–मरण की शृंखला से अपना पीछा छुड़ाकर परमानन्द रूपी पद को प्राप्त करता है। फलाकांक्षा से रहित योगस्थ होकर किये जाने वाले कर्म ही विहित कर्म कहलाते हैं और ऐसे ही कर्मों को ईश्वरार्पण हेतु किये जाने वाले कर्म कहकर पुकारा जा सकता है। ईश्वर की पूजा में भी अर्पित किये जाने वाले ऐसे फलाकांक्षा रहित कर्म–प्रसून ही साधक को समाधि सिद्धि का लाभ प्राप्त कराने में समर्थ होते हैं जैसा कि स्वयं भगवान ने कर्म की महत्ता बताते हुए

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

स्वे–स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धि यथा विन्दति तच्छृणु।
यतः प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्यं सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता)

अर्थात् 'स्वयं अपने कर्त्तव्य कर्मों में रत–रहकर ही पुरुष संसिद्धि प्राप्त करते हैं। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य किस प्रकार सिद्धि प्राप्त करता है सो तू मुझसे सुन।'

'अपने कर्त्तव्य कर्मों को करना ही उसकी पूजा है जिससे सब प्राणियों, यानी भूतों का आविर्भाव हुआ है, और जिससे यह सब जगत व्याप्त है। इस प्रकार की पूजा से ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है।'

वेद–शास्त्र के द्वारा अनुमोदित और ऋषि मुनियों द्वारा निर्धारित, फल की कामना से रहित कर्म ही प्रभु की पूजा की सर्व श्रेष्ठ साधना–सामग्री है और इन्हीं से मनुष्य सिद्धि अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर पाता है, यह भगवान श्रीकृष्ण का सुनिश्चित मत है जिसे हमने उन्हीं के शब्दों में श्रीमद्भगवद्गीता के उपरोक्त श्लोकों द्वारा ऊपर स्पष्ट किया है। परम प्रभु की अर्चना और पूजा जिन पावन–कर्मों से की जा सकती है वे ही निष्काम कर्म की संज्ञा में आते हैं—इनसे प्रतिकूल वासनामय कर्म विकर्म कहे जाते हैं। यही 'किंकर्म किम कर्मेति' की व्याख्या है जिसे प्रत्येक योग साधक को भली प्रकार समझकर सदा कार्यरत रहना चाहिए। अकर्मण्यता का जीवन व्यतीत करना योगियों और सिद्धिलाभ की अभिलाषा रखने वाले साधकों को किसी दशा में श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। अकर्मण्यता विकर्म का ही एक दूसरा रूप है। भगवद्गीता में कर्म और अकर्म की परिभाषा करते हुए योगिराज कृष्ण ने कहा है कि इनका भेद समझने में बुद्धिमान भी भ्रमित हो जाते हैं अतः मैं तुझे बताऊँगा कि कर्म कैसे करना चाहिए। इसे जानकर तू अशुभ से बच जायेगा। यथा—

किं कर्म किमकर्मेति कपयोऽप्यत्र मोहिताः,
तत्तेकर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्येऽशुभात्।

आगे वे कहते हैं—जो कर्म स्वार्थ, कामना, त्याग के सिद्धान्त को अपनाते हुए मनुष्य स्वाभाविक रूप से करने लगता है यानी सहज भाव से कर्म करना जब उसका सहज धर्म बन जाता है तब वही कर्म अकर्म कहलाता है। इस रीति से कर्मों को अकर्म की संज्ञा में ले आने का प्रयत्न ही साधक को ईश्वर प्रणिधान की सीमा में लाकर खड़ाकर देता है और भगवान पतञ्जलि के शब्दों में यह उसे समाधिलाभ का अधिकारी बना देता है।

सम्पादकीय—

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 114वाँ पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

कभी–कभी धराधाम पर भगवान से तद्भाव युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों–युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृतान्त जान लिया था। नेपाल में मण्डकी नदी पर स्थित त्रिवेणी धाम में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुये शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल–लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4–5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्व बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार–बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन

धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं। ध्यान की ऊँची–ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्‌ठा करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। उर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मंद संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं, अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान मे दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे–धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सदगुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है। जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाती है। उसे अब सब कुछ मिल गया। **'भक्ति–मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः'** गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18–20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगदधत्ता के प्रसंग में आपने स्वय ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था–तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवांई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को आपने नेति–धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान शिव की आज्ञा से व गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूव वाकसिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगीं। इसी प्रकार से जम्मू–कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधनारत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने लगे तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा–"मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गदगद कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते हैं। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामयाः' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरुह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बताकर योग सिद्धान्तों को

साधकों में कूट–कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने योग सिद्धान्त नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे–यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।''

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिए आप कल्पतरु हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है।' **प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्** कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले है इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्ध हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्ज्वल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

स्त्रियों के लिए गुरुदेव के उदात्त विचार–

स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का विचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उसका पति ही उसका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त और किसी से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल–कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के बहुत से उपाख्यान है जिसमें यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जाये तो आध्यात्म विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के शरीर में और पुरुष के शरीर में अन्तर ही क्या है ? हाड़–माँस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं।

आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक। केवल मात्र एक अमर ज्योति के रूप में विशुद्ध प्रकाश है जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है।

लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता है उन्हीं नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है। यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिए स्त्रीलिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुल्लिंग वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। तत्वतः पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषों के अन्दर जो मनन करने की शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी रखना चाहता है, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना–पीना, सोना–बैठना, बोलना–चालना सब कुछ पुरुषों के समान ही है तो पुरुषों के समान अध्यात्म चिन्तन क्यों नहीं कर सकतीं ? क्या उनको आत्मोत्थान का अधिकार नहीं है, क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आप को पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं ? अवश्य कर सकती हैं आसन बन्ध मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं ? क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म विद्या प्राप्त हो जायेगी और क्या वे उत्थान कर सकेंगी ? यद्यपि स्त्रियों को पूर्णरूपेण पतिव्रता और पुरुषों को पत्नीव्रत होना ही चाहिए, तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता किन्तु पतिव्रत पालन में गुरुदेव बाधक नहीं होते, प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को झिलमिला देता है।

इस प्रकार से मातृ–शक्ति के प्रति गुरुदेव का बड़ा ऊँचा भाव था और प्रायः कहा करते थे **''यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''**।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 114वाँ प्राकट्य दिवस 24 अक्टूबर श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम सहित उनके अन्य आश्रमों में भी विजया दशमी पर्व बड़े धूम–धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन बेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

इस पावन अवसर पर मैं सभी गुरु भाई–बहिनों को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नम:"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

योग साधना में आने वाले विघ्नों की निवृत्ति का उपाय श्री कृष्ण भगवान ने जब उद्धव जी को बता दिया तब उद्धव जी ने कहा–अच्युत! जो अपना मन वश में नहीं कर सका है, उसके लिये योगसाधना को मैं बहुत कठिन समझता हूँ। अत: कोई सरल और सुगम साधन बतलाइये, जिससे मनुष्य अनायास ही परमपद प्राप्त कर ले। प्रभो! आप जानते हैं कि अधिकांश योगी जब मन को एकाग्र करने लगते हैं, तब बार–बार चेष्टा करने पर भी सफल न होने पर दुःखी हो जाते हैं।

सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मन:।
यथाञ्जसा पुमान् सिद्धयेत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत।। 1.29 ।।
प्रायश: पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मन:।
विषीदन्त्य समाधानान्मनोनिग्रहकर्शिता:।। 2.29 ।।

पद्मलोचन! आप विश्वेश्वर हैं। जो मनुष्य आपके चरण–कमलों की शरण लेते हैं उन्हें अनायास सिद्धि प्राप्त हो जाती है। आपकी माया उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। क्योंकि उन्हें योगसाधन और कर्मानुष्ठान का अभिमान नहीं होता। वे योगी और कर्मी जो आपका आश्रय ग्रहण नहीं करते वे साधन के घमण्ड से फूल जाते हैं और माया उनकी मति हर लेती है।

अथात् आनन्ददुघं पदाम्बुजं
हंसा: श्रयेरन्नरविन्दलोचन।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभि–
स्त्वन्माययामि विहता न मानिन:।। 3.29.।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मादि ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। जब उद्धवजी ने अनुराग भरे चित्त से प्रश्न किया, तब वे मन्द–मन्द मुस्कान और प्रेम से कहना प्रारम्भ किया।

श्री भगवान ने कहा–प्रिय उद्धव! अब जिस धर्माचरण के बारे में उपदेश करने

वाला हूँ, वह यदि श्रद्धापूर्वक आचरण में लाया जाये तो संसार रूप दुर्जय मृत्यु को जीत लेगा। सब कर्मों को मेरे लिये करो और करते समय मेरा स्मरण का अभ्यास बढ़ाओ। ऐसा करने से कुछ ही दिन में मन और चित्त मेरे में समर्पित हो जायेगा। (स्मरण–योग की महत्ता गीता जी में भी भगवान ने अर्जुन को बताया है, **'तस्मात् सर्वेषु कालेशु माम् अनुस्मर युद्ध च' तस्मात् सर्वेषु कालेशु मम् अनुस्मर योग युक्तो भर्वार्जुन:**) शुद्धान्तःकरण हो जाने पर आकाश के समान बाहर और भीतर परिपूर्ण एवं आवरणशून्य मुझ परमात्मा को ही समस्त प्राणियों में देखें। ऐसा करने से ज्ञान दृष्टि पाकर वह सब कहीं मेरा साक्षात्कार करता हुआ संसार से उपराम हो जाता है। प्यारे उद्धव! मनुष्यों को ज्ञान, कर्म, योग, वाणिज्य और राजदण्डादि से क्रमशः मोक्ष, धर्म, काम और अर्थ रूप फल प्राप्त होते हैं, परन्तु तुम्हारे जैसे अनन्य भक्तों के लिये वह चारों प्रकार का फल केवल मैं ही हूँ।

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे,
यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः।।33।।

जब सर्वकर्म परित्याग करके मनुष्य मुझे आत्मसमर्पण कर देता है तब वह मुझसे मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! अब उद्धवजी योगमार्ग का पूरा–पूरा उपदेश प्राप्त कर चुके थे। उनकी आँखें प्रेमाश्रु से भीगी थीं, गला रुँध गया था। वे हाथ जोड़े चुपचाप थे।

स एवमादर्शित योगमार्ग–
स्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य।
बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो,
न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः।।35.29।।

उद्धव जी ने कहा—आपने प्रभो! अपनी माया से दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और यादवों के सुदृढ़ स्नेहपाश से मुझे बाँध दिया था। आज आपने आत्मबोध की तीखी तलवार से उस बन्धन को अनायास ही काट दिया है। महायोगेश्वर! मेरा आपको नमस्कार है। अब आप कृपा करके मुझ शरणागत को ऐसी आज्ञा दीजिए, जिससे आपके चरण कमलों में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी।। 40.29.।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—उद्धव जी! अब तुम मेरी आज्ञा से बदरीवन चले जाओ। वह मेरा ही आश्रम है। गंगाजल का स्नान व पान के द्वारा तुम पवित्र हो जाओगे। अपनी वाणी और चित्त मुझ में लगाये रहना। तुम स्वयं मेरे स्वरूप के ज्ञान और अनुभव में डूबे रहना। चित्त शान्त रहे। अन्त में त्रिगुणातीत होकर मेरे परमार्थ स्वरुप में मिल जाओगे। श्री शुकदेव जी कहते हैं—परीक्षित्! स्वयं भगवान ने ही उद्धव जी को जब ऐसा उपदेश और आज्ञा दिया तब उद्धव जी ने उनकी परिक्रमा की और चरणों पर सिर रख दिया। उस समय उनके नेत्र अश्रु पूरित थे। प्रेम के कारण भगवान का विछोह उनको रह रह कर मूर्च्छित कर देता था। भगवान की पादुका को सिर पर धारण कर वहाँ से प्रस्थान किये।

भगवान की दिव्य छवि हृदय में धारण किये उद्धव जी बद्रीकाश्रम पहुँचे वहाँ उन्होंने तपोमय जीवन व्यतीत करके भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूपभूत परमगति प्राप्त किया।

स्वयं श्री मुख से योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपने परम प्रेमी भक्त उद्धव को ज्ञानामृत का उपदेश किया। यह ज्ञानामृत आनन्दमहासागर का सार है। जो श्रद्धा से इसको मनन् चिन्तन के साथ धारण करता है, वह मुक्त हो ही जाता है तथा उसके संग से सारा जगत् मुक्त हो जाता है।

ए एतदानन्दसमुद्रसम्भृतं
ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम्।
कृष्णेन योगेश्वर सेविताङघ्रिणा,
सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद् विमुच्यते।।48.29.।।

"ॐ श्रीरामलाल प्रभवे नमः"

भगवान कृष्ण का वृन्दावन

प्रेषक–कृष्ण कुमार, गोरखपुर

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में, योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण और उनका परमधाम वृन्दावन जो पृथ्वी का गोलोक कहा गया है। प्रेम की आवाज आज भी वहाँ विद्यमान है। जहाँ राधे–राधे का स्वर भक्तों को आह्लादित कर देता है। ऐसे परमधाम वृन्दावन एवं भगवान श्रीकृष्ण की लीला को सुनाने हेतु भगवान भोलेनाथ से कही। भगवान शिव माता की जिज्ञासा को जानकर योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण एवं वृन्दावन की कथा सुनाने लगे। उसी कथा को ऋषियों ने सूत जी से सुनना चाहा। सो सूत जी ने कहा–ऋषियों एवं कृष्ण रसिक श्रोताओं जैसा भगवान शिव ने माता पार्वती जी को सुनाया था। उसी कथा को सुनिये। वृन्दावन धाम भगवान का सबसे प्रिय धाम है। तीनों लोकों में यह अत्यन्त गुप्त स्थान है। बड़े–बड़े देवेश्वर भी वृन्दावनधाम की पूजा करते हैं। देवताओं और सिद्धों का निवास है। योगीन्द्र, मुनीन्द्र और अन्य रसिक भी वृन्दावन में निवास चाहते हैं। धाम परमानन्द रस का पूर्ण आश्रय है। रस से भरा कल्प वृक्ष है। जहाँ कामधेनु गायें समूह में निवास करती हैं। वहाँ के सुख का भोग करती हैं। वहाँ प्रत्येक पुरुष विष्णु तथा स्त्री लक्ष्मी के दशांश से प्रकट हुए हैं। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण नित्य निरन्तर किशोरावस्था अर्थात् पन्द्रह वर्ष की वय सदैव बनी रहती है। वे स्वयं आनन्द के स्वरूप हैं। उनके मुख की मन्द मुस्कान लोगों को स्वाभाविक आकर्षित करती है। वैष्णव जन उस वन का आश्रय लेकर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते हैं। वन भी ब्रह्मानन्द का साक्षात् विग्रह है। सूर्य एवं चन्द्र अपनी मन्द रश्मियों के माध्यम से आनन्द लेते हैं। वह दुःख एवं जरा से रहित स्थान है। भेदभाव एवं अहंकार वहाँ प्रवेश ही नहीं कर सकता है। पार्वती वहाँ के आनन्द का वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता है।

भगवान श्रीकृष्ण के चरण रज के स्पर्श से वृन्दावन भूतल पर नित्यधाम के नाम से प्रतिष्ठित है। गोविन्द का अक्षयधाम है। वृन्दावन को भगवान के स्वरूप से भिन्न नहीं समझना चाहिए। वह अखण्ड ब्रह्माण्ड का आश्रय है। जहाँ धुलि के स्पर्श मात्र से मुक्ति हो जाती है। इसलिए हे पार्वती तुम सम्पूर्ण चित्त से अपने हृदय के भीतर उस

वृन्दावन का सदैव चिन्तन करो। वहाँ की विहार स्थलियों में किशोर विग्रह श्री कृष्ण चन्द्र का ध्यान करती रहो। वृन्दावन सहस्त्रदल कमल का केन्द्र स्थान है। कलिन्द कन्या यमुना उस कमल कर्णिका की प्रदक्षिणा किया करती है। उस पवित्र जल में आनन्द दायिनी सुधा से मिश्रित घनीभूत मकरन्द रस की स्वाभाविक प्रतिष्ठा है। यमुना में विभिन्न रंग के कमल खिले हुए उसकी शोभा को निरन्तर बनाये रहते हैं।

माता पार्वती ने आगे पूछा–प्रभो भगवान् श्रीकृष्ण का श्री विग्रह कैसा है। इसको सुनने की बहुत इच्छा हो रही है। माता पार्वती की जिज्ञासा को सुनकर भगवान शिव ने कहा–देवि तुम बड़ी सौभाग्यशाली हो जो इस प्रकार भगवान के श्री विग्रह को जानने की इच्छा की हो। यह लोक कल्याण कारक प्रश्न किया हो। भगवान ने कहा—देवि योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण का श्री विग्रह वृन्दावन के मध्य भाग जहाँ सुन्दर योग पीठ है। जिस पर माणिक्य का सुन्दर सिंहासन है। उस पर अष्टकमल है। जिसकी पंखुड़ियाँ सुखदायी तथा सौरभ से भरा रहता है। उसी पर वे विराजमान रहते हैं। वैष्णव जन्म उनकी सेवा में लगे रहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ही यहाँ के अधीश्वर हैं। जिनमें समस्त ऐश्वर्य विद्यमान है। वे ब्रजवासियों के एकमात्र प्राण वल्लभ है। वे किशोरावस्था को पार कर यौवन में पदार्पण कर विराजते हैं। वे सबके आदिकारण है। लेकिन उनका कोई आदि नहीं है। वे नन्दगोप के यहाँ पुत्र के रूप में विराजमान होकर सबको आनन्दित करते हैं। यद्यपि वे अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म है। जहाँ वेद की श्रुतियाँ सदैव स्तुति करती हैं। वे ही परम धाम रूप है। इसलिए योगी जन उनका सदैव ध्यान करते हैं।

ऐसे भगवान के श्री विग्रह का सबको सदैव ध्यान करना चाहिए। उनके शरीर की आभा श्याम वर्ण का है। नूतन मेघमाला के समान स्निग्ध है। उनका स्पर्श सुखद तथा सबको सुख प्रदान करने वाला है। बाल घुंघराले हैं। केशों के ऊपर ललाट के दक्षिण भाग में श्याम रंग की चूड़ा के कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। कभी मन्दार के पुष्प तथा कभी मयूर के पंख के मुकुट धारण करते हैं। उनकी आभा से अलंकृत आभूषण स्वयं अपने को धन्य मानते हैं। चंचल अलकावली उनके मस्तक की शोभा को और बढ़ा देते हैं। ललाट में कस्तुरी तिलक साथ ही सुन्दर गोरोचन बिंदी की शोभा मन को आकर्षित करती है। शरीर इन्दीवर की तरह स्निग्ध तथा नेत्र कमल दल की भांति विशाल है। जब वे मन्द–मन्द मुस्कराते तो उनकी चितवन भौंहें सौन्दर्य से युक्त हो जाती हैं। अपने नासाग्र में गजमोती धारण करके उनकी कान्ति त्रिभुवन का मन

आकर्षित करती है। ओष्ट सुन्दर लाल और अत्यन्त चिकना है। कानों में मकराकृति कुण्डल पहने हुए हैं। कुण्डल की किरणें कपोलों की शोभा बढ़ाते हैं। वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि तथा वत्स चिह्न शोभा पा रहे हैं। हाथों में कड़े कमर में करधनी भुजाओं में बाजूबन्द स्वाभाविक चित्त को हर लेते हैं। श्री अंगों में कपूर, अगरु, कस्तुरी और सुगंधित चन्दन से शोभा पा रहे हैं। शरीर पर पीताम्बर शोभायमान रहता है। हाथ पैर के तलवे ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के चिह्न से सुशोभित है। पार्वती भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप की झांकी सनक और सनन्दन आदि योगीश्वर अपने हृदय में बसाये रहते हैं। उनकी त्रिभंगी छवि ऐसा प्रतीत होता जैसे सुन्दरता को सृष्टि की समस्त निर्माण सामग्री से निकाल कर बनाया गया है। सिकोड़े होठ पर जब वंशी रखकर बजाते हैं। तो उसकी मीठी तान से त्रिभुवन को मोहित कर सबको प्रेम सुधा के सागर में निमग्न कर देते हैं।

माता पार्वती ने कहा—प्रभो भगवान श्रीकृष्ण के विग्रह रूप को सुनकर ऐसा लगता है जैसे गोविन्द नाम से वे जगत के कारण हैं। देवि भगवान श्रीकृष्ण ही सृष्टि कर्ता, पालक और संहार की शक्ति से युक्त जो देवता हैं। उनमें श्रीकृष्ण का ही वैभव है। भगवान के ही श्री विग्रह की शोभा की कान्ति के कोटि–कोटि अंश से चन्द्रमा तथा करोड़वें अंश से किरणों का जो प्रकाश निकलता उससे सूर्य प्रकाशित होता है। वे परमानन्द रसामृत से परिपूर्ण है। संसार को मुग्ध करने वाला जो नाना प्रकार का सौरभ है। वह सब भगवद् विग्रह की दिव्य सुगन्ध के अनन्त कोटि अंश मात्र है। भगवान के स्पर्श से ही पुष्पगन्ध आदि नाना सोरभों का प्रादुर्भाव होता है। ऐसे श्रीकृष्ण की प्रियतमा उनकी प्राण वल्लभा श्री राधा ही आद्या प्रकृति कही गयी है।

इस प्रकार भगवान शिव ने माता पार्वती को श्रीकृष्ण की लीला एवं वृन्दावन कथा का रस पान करके अपने को धन्य समझने लगी। ऐसे रसिकराज भगवान हम साधकों के हृदय में विराजकर हमें भी धन्य बनावे। ऐसी कृपा सद्गुरुदेव भगवान योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से सदैव कामना हर साधक की रहती है। सद्गुरुदेव उस रस का पान मिलता रहे। गुरु बिनु भव निधि तरहि न कोई। सद्गुरु की कृपा से वृन्दावन तथा वृन्दावन के स्वामी योगेश्वर भगवान की कृपा सदैव बनी रहे—

जब मुरली वाला तुमको बेहिसाब देता है।
तो गिनगिन कर क्यों नाम लेता है।।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

गुरु कृपा की महिमा

—अन्तूराम यादव, प्रयागराज, मो. 9936678368, 7376691758

प्रातः स्मरणीय हमारे आप के प्राण धन, सर्व शक्ति मान, सर्व समर्थ, अन्तर्यामी, योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरु भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम। सभी आदरणीय भाई–बहनों को इस छोटे भाई का बारम्बार सादर जयगुरुदेव। गुरु गीता, गुरु भक्तों के लिए एक अनूठा ग्रंथ है। यह ग्रन्थ गुरु–भक्ति से ओत–प्रोत है। इसमें गुरु–कृपा की महिमा का अद्भुत चमत्कार देखने को मिलता है। इस महान ग्रंथ का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, आइए गुरुगीता के ही आधार पर कुछ चिन्तन मनन किया जाये।

एक बार नैमिषारण्य के तीर्थ स्थल में ऋषियों का एक बड़ा समाज एकत्रित था। उस समय वहाँ महाज्ञानी महर्षि सूत जी भी विद्यमान थे। ऋषियों ने सूत जी से कहा– हे सूतजी! गुरुगीता को गुप्त से भी गुप्त विशेष विद्या कहा गया है। हम सभी को इसका उपदेश करें। आप की कृपा से हम सब उसे सुनने का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। सूत जी ने ऋषियों से कहा–हे ऋषिगण! यह बड़ी प्यारी कथा है। इस गुरु गीता का प्रादुर्भाव तब हुआ, जब कैलाश पर्वत पर अत्यन्त रमणीय वातावरण में माता पार्वती ने भक्तिपूर्वक भगवान सदा–शिव से एक अद्भुत प्रश्न पूछा। प्रश्न था–

"ॐ नमो देवदेवेश परात्पर जगत्गुरु।
सदाशिव महादेव गुरु दीक्षां प्रदेहि मे।।
केन मार्गेण भो स्वामिन्, देही ब्रह्ममयो भवेत्
त्वंकृपां कुरु मे स्वामिन्, नमामि चरणौ तव।।

अर्थात् माता पार्वती ने सर्वप्रथम भगवान का शिष्यत्व ग्रहण किया और फिर उनसे प्रश्न करती हैं–हे स्वामी! आप मुझे बतायें कि किस मार्ग से चलकर जीव ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है। हे स्वामी! आप मुझ पर कृपा करें। मैं आप के चरणों में प्रणाम करती हूँ।

यही है आदि जिज्ञासा! यही है प्रथम प्रश्न। यही वह बीज है, जिससे गुरु तत्व

के ज्ञान का बीज अंकुरित हुआ, ज्ञान के बीज का यही अंकुर भगवान शिव की कृपा से पल्लवित–पुष्पित होकर महावृक्ष बना। माता पार्वती की यह जिज्ञासा हम सब गुरु भक्तों की कल्याण–कामना के उद्देश्य से उपजी थी। सर्व ज्ञानमयी माँ ने अपनी संतानों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही महादेव जी से उपरोक्त प्रश्न पूछा था। माता पार्वती के प्रश्न के उत्तर में भगवान शिव बोले–

''मम रूपासि देवित्वं त्वत्प्रीत्यर्थे वदाम्यहम्।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनाऽपि कृतः पुरा।।
दुर्लभं त्रिषुलोकेषुतत् शृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुं बिना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।।''

अर्थात् हे देवी! आप तो मेरा स्वरूप ही हैं। आप का यह प्रश्न बड़ा ही लोक हितकारी है। ऐसा प्रश्न पहले कभी किसी ने नहीं पूछा। आप की प्रीति के कारण मैं आप के इस प्रश्न का उत्तर अवश्य दूँगा। हे महादेवी! यह उत्तर भी तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है, फिर भी मैं इसे अवश्य कहूँगा। उत्तर आप ध्यान से सुनें–सद्गुरु के अलावा कोई ब्रह्म यानी कोई अन्य उच्चतम् तत्व नहीं है। भगवान शिव जोर देकर कहते हैं–हे देवी! यह सत्य है, सत्य है। भगवान शिव के इस कथन में गुरु और शिष्य की अनन्यता एवं एकात्मता की झलक मिलती है। गुरु और शिष्य अलग–अलग नहीं होते। बस, उनके शरीर अलग–अलग दिखते भर हैं। उनकी अन्तर्चेतना आपस में घुली–मिली होती है। सच्चा शिष्य गुरु का अपना स्वरूप होता है। उसमें सद्गुरु की चेतना प्रकाशित होती है। सद्गुरु अपने सच्चे शिष्य को दुर्लभ से भी दुर्लभ तत्व एवं सत्य बताने के लिए सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। शिष्य के भी समस्त क्रियाकलाप अपने सद्गुरु की अन्तर्चेतना की अभिव्यक्ति के लिए ही होते हैं।

महादेव के इस कथन का अन्तिम सत्य यह है कि **''गुरु ही ब्रह्म है।''** यह संक्षिप्त कथन बड़ा ही सारभूत है। इसे किसी बौद्धिक क्षमता से नहीं बल्कि भावनाओं की गहराई से समझा जा सकता है। इसकी सार्थक अवधारणा के लिए शिष्य की छलकती भावनाएँ एवं पूर्ण समर्पण चाहिए। जिसमें यह पात्रता है, वह आसानी से भगवान भोलेनाथ के उपरोक्त कथन का अर्थ समझ सकेगा। **''गुरु ही ब्रह्म है''** इस कथन में अनेक गूढ़ अर्थ समाये हुए हैं। जिसने गुरु तत्व को समझ लिया, वह ब्रह्मतत्त्व का भी साक्षात् कार कर पायेगा। सद्गुरु कृपा से जिसे दिव्य दृष्टि मिल सकी, वही ब्रह्म का दर्शन करने में सक्षम हो सकेगा।

कोई विद्या हो, उसके सारतत्व को समझने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के अभाव में अर्थवान विद्याएँ भी अर्थहीन हो जाती हैं। इन विद्याओं के सार तत्व को न समझने के कारण भटकन ही पल्ले पड़ती है। जितना ज्यादा पढ़ेंगे, उतनी ही ज्यादा भ्रान्तियाँ होंगी। यदि गुरु कृपा साथ हो, तो अँधेरे भी रोशनी के दीये बन जाते हैं। गुरु कृपा की एक सच्ची घटना का उल्लेख किया जा रहा है–

चीन में एक सन्त हुए हैं, जिनका नाम था शिन–हुआ। इन्होंने काफी दिनों तक साधना की। देश–विदेश में भ्रमण किया। विभिन्न शास्त्र एवं विद्याएँ पढ़ीं; परन्तु चित्त को शान्ति नहीं मिली। उन दिनों शिन–हुआ को बड़ी बेचैनी थी। अपनी बेचैनी के इन्हीं दिनों में उनकी मुलाकात भारत के एक बोधि धर्म नामक सन्त से हुई। उन दिनों बोधि धर्म भारत से चीन गये हुये थे। बोधि धर्म के सानिध्य में, उनके सम्पर्क के एक पल में ही शिन–हुआ की सारी भ्रान्तियाँ ठीक उसी प्रकार समाप्त हो गई जैसे सालों साल से एक अँधेरी गुफा के अंधेरे को एक दीये का प्रकाश क्षण भर में दूर कर देता है। बात अनोखी थी। जो सालों–साल अनेकानेक शास्त्रों और विद्याओं को पढ़ कर न हुआ, वह एक पल में हो गया। सद्गुरु की यही पहचान होती है कि सद्गुरु के सम्मुख होते ही शिष्य की सारी भ्रान्तियाँ, सारे द्वन्द्व स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। यही घटना शिन–हुआ के साथ घटी।

अपने जीवन की इस अनूठी घटना का उल्लेख शिन–हुआ ने अपने संस्मरणों में किया है। उन्होंने अपने गुरुदेव बोधि धर्म के वचनों का उल्लेख करते हुए लिखा है–विद्याएँ और शास्त्र दीये के चित्र भर हैं। इनमें केवल दीये बनाने की विधि भर लिखी है। दीये के चित्रों को, उसके बनाने की विधियों को कितना ही पढ़ा जाये, कितना ही रटा जाये, उन्हें छाती से लगाये रखा जाये, फिर भी दीये के चित्र से तनिक भी रोशनी नहीं होगी। शास्त्र और विद्याएँ सद्गुरु के बिना अधूरे हैं।

हम सभी गुरु भक्तों को भली–भाँति यह समझ लेना चाहिए कि सद्गुरु से मिलना ठीक वैसे ही है जैसे चारों ओर रोशनी फैलाते हुए दीये यानी दीपक से मिलना। शिन–हुआ ने लिखा है कि उनका अपने सद्गुरु बोधि धर्म से मिलना ऐसे ही हुआ। वे कहते हैं–यदि गुरु कृपा का प्रकाश स्रोत सम्मुख हो तो भला भ्रान्तियों एवं भटकनों का अँधेरा कितनी देर तक टिका रहेगा ? यह एक गणित का प्रश्न चिन्ह है। इसका जवाब जोड़ घटाव, गुणा–भाग से नहीं मिलेगा बल्कि इसका जवाब सद्गुरु कृपा की

अनुभूति में ही निहित है। साधकों के जीवन में यदि यह अनुभूति आ जाये तो सभी विद्याएँ, सारे शास्त्र अपने आप ही अपना रहस्य खोलने लगते हैं। शास्त्र और पुस्तकें न भी हों तो गुरु–कृपा से तत्व बोध होने लगता है। गुरु कृपा की महिमा ही ऐसी है।

हमारे आपके प्राण धन सद्‌गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में एक भजन की कुछ पंक्तियाँ अर्पित करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

''बिनु नौका ही तैरा दे, मेरा माँझी है अनोखा।
ना छोड़ो इसका दामन, अब पाके ऐसा मौका।।
करने को पार आया, बनके गुरु हमारा।
परवर दिगार आया, बनके गुरु हमारा।।''

सादर जय गुरुदेव!

श्री सद्‌गुरुदेव भगवान का एक अकिंचन बालक

उत्तम पुस्तकों के स्वाध्याय का महत्त्व

विद्वानों का कथन है कि मानव जीवन को उन्नत बनाने वाली ज्ञानवर्धक पुस्तकें मानवों की परम मित्र होती हैं। मानुष मित्र तो धोखा दे सकता है परन्तु श्रेष्ठ पुस्तकें मानव के कष्टदायक समयों में सच्चे मित्र के समान उसे सान्त्वना देने वाली और उत्साहित करने वाली होती हैं। ऋषियों–मुनियों और सन्त महात्मा पुरुषों का सत्संग तो मनुष्य को बड़ी दुर्लभता से मिलता है। विगत महात्माओं का प्रत्यक्ष सत्संग तो प्राप्त हो ही नहीं सकता। तथापि हम इन महापुरुषों के लिखे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें तो निश्चय ही हमें इनके प्रत्यक्ष सत्संग के समान शान्ति और ज्ञान प्राप्त होता है। इसीलिए हमारे ऋषि–मुनियों ने स्वाध्याय को दैनिक कर्त्तव्य में रखा है। स्वाध्याय से जहाँ मनुष्य को प्रत्यक्षलाभ होता है वहाँ वह ऋषि–ऋण से भी उऋण होता है।

योग–दर्शन में तो यहाँ तक कहा है कि स्वाध्यायशील व्यक्ति का मार्गदर्शन स्वयं देवता और ऋषिगण आकर किया करते हैं।

गृहस्थ के लिए आवश्यक पंच महायज्ञों का विधान

श्री हीरालाल शास्त्री, फर्रुखाबाद

भारतवर्ष में प्राचीन काल से अहिंसा का पालन तत्परता से करने के लिए हिन्दू कहलाने वाले वर्ग को प्रतिदिन 5 यज्ञों का विधान किया था जिनसे अपने पराये सब सुख रहित थे। मनुस्मृति–

फच्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषध्युपस्करः।
कण्डनीचोद कुम्भश्च बध्यते यास्तुवाह्यन्॥

(मनु. 3/58)

अर्थात् चूल्हा, सिललोढ़ा, झाड़ू, उखली, घड़ा वास्तव में गृहस्थ के घर में यह पाँच कसाई खाने कहे जाते हैं अतः अनिवार्य रूप से होने वाली इस हिंसा का भी विधान हमारे पूर्वजों ने विचारपूर्वक प्रायश्चित्त और उपाय निश्चित किया है। जैसे 'देवतातिथिभृत्यानां पितृणा मात्यनश्चयः। वा निर्वपतिपञ्चाना–मुच्छ्रसन्नसजीवात श्रुतिप्रमाण–निष्कारणो वेदोऽध्येयोज्ञेयश्च। अर्थात् वेद को निष्कारण पढ़ना और जानना चाहिए। (यही ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है) अध्ययन उसी ज्ञान का करते हैं जिससे धन की प्राप्ति अवश्य हो। यद्यपि अंग्रेजी शासन ने भारत की सभ्यता को भुलाने के लिए अपनी भाषा का प्रचार किया और उसमें नौकरी का विधान कर दिया जिससे अधिकतर ने संस्कृत को छोड़कर नौकरी वाली भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया और वेद को छोड़ दिया। वास्तव में शरीर और मन की शुद्धि करने वाली और ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली संस्कृत का ही परित्याग कर दिया तब वेदाध्ययन करना तो प्रायः असंभव ही हो गया। इस असम्भवता में भी ऋषियों ने कल्याण के लिए नियम बनाये कि गौतम, आपस्तम्ब–एकमृयमेकं वायजुरेकं वा सामाभिव्याहरेत्। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की एक ऋचा का ही अध्ययन कर ले मनु का वचन है–

अपां समीपे नियतो
नैत्यिकं विधिमास्थितः।
साविन्त्रीमप्यधीयति

गत्वारण्यं समाहितः।।

नित्य के अवश्य अध्येय वेदाध्ययन के लिए कम से कम इतना अवश्य ही करे कि वन में जलाशय के समीप बैठकर सावधान होकर गायत्री का जप करे इससे भी त्रुटि देखकर कि एक ही व्यक्ति के अध्ययन से संसार का ही दीर्घ काल तक कोई लाभ नहीं हो सकता–इसीलिए, इस परम्परा को चलाने के लिए उपाय करना चाहिए जिससे नवीन वेद ज्ञाता उत्पन्न होते रहें। इसलिये अधिकारी शिष्यों को वेद पढ़ाना चाहिए। यथा–

यो विद्यामधीत्य आर्थिने न ब्रूयात्,
स कार्यहास्यात् श्रेयसोद्धार मपावृनुयान्।

अर्थात् जो वेदाध्यान करके शिष्य को उसका अध्यापन नहीं कराता, वह कार्य की हानि करता है और कल्याण का मार्ग ही बंद कर देता है। मनु का वाक्य–

यमेव तु शुचिं विद्या
नियतं ब्रह्मचारियम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय
निधिपाया प्रमादिने।।

अर्थात् जिसे तुम पवित्र–जितेन्द्रिय–ब्रह्मचारी मुझ निधिकारक्षक अप्रमादि विप्र को पढ़ा करे। प्रतिदिन तिलोदक देकर पितरों को तृप्त करना और एक ब्राह्मण को भोजन कराना इस प्रकार पितरों को तृप्त करना यह दैनिक प्रसिद्ध पितृयज्ञ है। हां पितृ पक्ष में प्रतिदिन पार्वण श्राद्ध करने का विधान है। परञ्च आधुनिक समय में तो प्रायः तर्पण ही करके अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं केवल मृत्यु तिथि को श्राद्ध, ब्राह्मण भोजन देने में अपना कर्त्तव्य पूर्ण समझते है।

वास्तव में अर्थयादि नित्य पितरों की और परलोकगामी नैमित्यिक पितरों को पिंड प्रदानादि से किये जाने वाले सेवारूप यज्ञ को पितृयज्ञ कहते हैं।

सन्मार्ग में लगाने और असन्मार्ग से बचा कर माता, पिता, पुत्र का ज्ञान प्राप्त कराते हैं। उन्हीं के अथक परिश्रम से मनुष्य धर्म–अर्थ, काम–मोक्ष को प्राप्त होकर सुखी होता है। ऐसे दयालु माता, पिता की प्राप्ति के लिए उनके सम्मान के लिए अपनी कृतज्ञता के लिए उनसे उऋण होने के लिए पितृयज्ञ नितान्त आवश्यक है। आधुनिक काल में विरले ही पुत्र इस प्रकार माता–पिता का महत्त्व मानते हैं। अधिकतर स्त्रियों की प्राप्ति होने के बाद वृद्ध माता–पिता को साधारण भोजन भी नहीं दे सकते। परञ्च

समधिक अवज्ञा करते हैं। फिर वह सुखी कैसे रह सकते हैं। श्री तुलसीदास जी कहते हैं–

नारि विवशनर सकल गुसायीं।
नाचहिं वट मर्कट की नायीं।।

ऐसी दशा में माता, पिता तो मनुष्य के होते हैं उनकी स्त्रियाँ पति की माता को क्यों मान सकती हैं यह ख्याल तो मनुष्य की बुद्धि पर ही निर्भर है।

देवयज्ञ–जिसमें सूर्य, अग्नि, चन्द्र, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, नवग्रह आदि की प्रीति के लिए धृत द्वारा आहुति दी जाती है यही देवयज्ञ कहा जाता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः
सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिः
वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अर्थात् अग्नि में जो आहुति दी जाती है वह आदित्य में पहुँचती है आदित्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न होता है अन्न से प्राणी उत्पन्न होते और जीते हैं।

भूतयज्ञ–सभी जीवों पशु, पक्षी, कृमि, कीट, कुत्ता, चाण्डाल, अन्त्यज, अपाहिज सबको शक्ति अनुसार प्रतिदिन सिद्ध अन्न देने का विधान है। जिससे रोटी का प्रश्न हल होकर आपस में प्रेम बढ़े। दुःख दरिद्रता आजकल की सी न रहे।

नृयज्ञ–अतिथि सत्कार करना नृयज्ञ कहलाता है। आजकल अपने दोस्तों में पुरुष और स्त्रियाँ अपनी सहेलियों में इसका प्रचार यथा कथंचित चाय, दालमौठ मुगौड़ी, पकौड़ी आदि से तो करते हैं वह भी बदले की भावना प्रधान होती है। भूखा, गरीब अपरिचित व अपाहिज आ जाये तो उसके लिए हम लोगों के घर में या हृदय में कोई स्थान नहीं है। प्रायः निराश होकर ही लौटता है। भारत में पूर्वज दम्पत्ति अतिथि को भोजन करा कर ही स्वयं करते थे। यह प्रत्येक गृहस्थी का साधारण धर्म था इसी से वह अबकी अपेक्षा सुखी थे। मनुस्मृति–

अघं स केवलं भुद्क्तेयः
पचत्यात्म कारणात्।

(3/118)

अर्थात् अपने लिए रसोई बनाने वाला पाप का ही भक्षण करता है। पञ्चमहायज्ञ के विवरण से आप अवश्य समझ गये होंगे कि जब घर में 5 महायज्ञ होते थे तब

कोई झगड़ा विषमता, संघर्ष नाम वाले दृश्य सामने नहीं सुनाई पड़ते थे जैसे कि आज हो रहे हैं। जीवन यात्रा सुखपूर्वक हो सब प्रकार चलती थी। कृत्रिमता नाम की कोई वस्तु नहीं दिखाई देती थी।

कृत्रिमता—आज के समय में समाज कृत्रिमता की तरफ दौड़ रहा है। अपनी सत्य दशा पर पर्दा डालकर कृत्रिम रूप से संसार के सामने आने का ही प्रयत्न करता है। इसी कारण दुःख उठाता है। अतः कृत्रिमता को त्यागकर सत्यता का पालन करते हुए जीवन निर्वाह करना चाहिए।

पञ्चमहायज्ञ का वर्णन ऋषियों ने अपने धर्म–ग्रन्थों में यत्र–तत्र किया है।

तैत्तियारण्यक में—

पञ्चवा एते महायज्ञा सतति प्रतायन्ते, देवयज्ञः, पितृयज्ञः, मनुष्य यज्ञः, भूत–यज्ञः, ब्रह्मयज्ञः।

आश्वलायन में—

अथाता पञ्चमहायज्ञाः देवयज्ञः, भूतयज्ञः, पितृयज्ञः, ब्रह्मयज्ञः, मनुष्य यज्ञः।

छान्दोग्य परिशिष्ट—

देव भूत पितृ ब्रह्म मनुष्याणांयनुक्रमात्।
महासत्राणि जानीयात् त एव हि महामखा।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति आदि में इनका वर्णन है।

भगवान कृष्ण ने भी कहा है—

यज्ञा शिष्टाशिनः सन्तः
मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।

इत्यादि।

नौलि

उदर की आभ्यान्तरिक शुद्धि एवं स्वच्छता के लिये संसार में अद्वितीय क्रिया

(श्री सूरजप्रकाश शर्मा)

नित्यानन्दं निराधारं
निखिलाधारमव्ययम्।
निगमद्वयगतं नित्यं
सद्गुरुं तं नमाम्यहम्।।

हमारे प्राचीन ऋषि–महर्षियों सिद्ध–योगियों के श्रम और मनन–चिन्तन व अभ्यास के फलस्वरूप जिस तरह हमें अन्य लाभप्रद विद्यायें मिली हैं, उसी तरह यह यौगिक शोधन षट्कर्म भी उनके वैज्ञानिक अनुभव से ही हमें प्राप्त हैं। ये षट्कर्म पूर्णतः शास्त्रीय हैं। इनका पालन दुःसाध्य नहीं, ब्लकि सुसाध्य है। उपयोग की दृष्टि से यह सर्वोपयोगी हैं और अद्भुत लाभ प्रदान करने वाले हैं।

मन, बुद्धि, आत्मा तथा शरीर को सदैव स्वस्थ रखने के लिए ये साधन अचूक सिद्ध हुए हैं। इन साधनों से शुद्ध हुए शरीर में हल्कापन, शारीरिक सुन्दरता, अध्यात्मिक प्रसन्नता, आरोग्य, सन्तोष, धैर्य, स्वर की मधुरता, शरीर में सुगन्ध आदि दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं।

इन साधनों से शुद्ध हुआ शरीर ही योग–मार्ग का अधिकारी है।

ईश्वरीय आनन्दामृत का पान करना ही मानव–जीवन की सफलता है। कहा है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

अर्थात् मानवता के स्वरूप स्थिति रूप वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन्हीं से है। इन चारों पदार्थों का आधारभूत मौलिक साधन है स्वस्थ शरीर। शरीर के मल, चित्त के विक्षेप, अज्ञान के पर्दे को दूर कर स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों को प्राप्त कर आत्मसाक्षात्कार के उपयुक्त होना उन्नति के प्रथम दो सोपानों (आधि भौतिक और आधि दैविक सोपानों) का अतिक्रमण करना है। इसके निमित्त हमारे प्राचीन तत्वदर्शी सिद्धयोगियों ने सर्वोपयोगी तथा वैज्ञानिक साधनों का निर्देश किया है।

शरीर शुद्धि के लिए यौगिक शोधन षट्कर्म हैं। शरीर को शक्तिशाली व स्वस्थ रखने के लिए अथवा प्राप्त शक्ति की रक्षा के लिए तथा अधिक समय तक शरीर को एक सी उत्तम स्थिति में रखने के लिए विविध मुद्रायें यौगिक आसन, प्राणतत्व साधन और सर्व सुख प्राप्त होते हुए भी प्रभु दर्शन प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त सभी साधनों के साथ-साथ प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि रूप सूक्ष्म यौगिक साधनायें निर्दिष्ट की गयी हैं।

यहाँ सर्व प्रथम उस साधन पर प्रकाश डालूँगा, जो योगियों के योग का मूल आधार है। वह है शरीर शुद्धि-जिसके लिए यौगिक शोधन षट्कर्म है।

षट्कर्म में मुख्य कर्म 'नौलिकर्म' है। इस क्रिया की सिद्धि के बिना कोई भी योगी श्रेष्ठ हठयोग को अन्य क्रिया सिद्ध कभी नहीं कर सकता।

नौलि कर्म के अभ्यास से पूर्व जिस महत्त्वपूर्ण सोपान का वर्णन करना है, वह है 'उड्डीयान बन्ध'। संस्कृत में इसका सीधा अर्थ है, उड्डीयान-उड़ती हुई कोई वस्तु, बन्ध = बांधना। किसी उड़ती हुई वस्तु को (श्रेष्ठ वस्तु) अपने नियन्त्रण में करना उड्डीयानबंध है। ऊर्ध्वमुखता के लिए यह अति श्रेष्ठ क्रिया है। उदर के सभी यन्त्रों को क्रियाशील करने के लिए उड्डीयान बन्ध अति उत्तम एवं श्रेष्ठ है। इसकी सिद्धि से चित्त एकाग्र होने लगता है। कुण्डलिनी जागरण होने लगती है-

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि
तान पश्चिममाचरेत्।
उड्डयानाबन्ध एष
स्यात्सर्वदु:खौघनाशन:।।
उदरे पश्चिम तानं
नाभेरूर्ध्वतु कारयेत्।
उड्डयान ख्योऽत्र बन्धाऽय
मृत्युमातङ्गकेसरी।।

नाभि से ऊपर और नीचे पश्चिम तान का आचरण करें, जिससे कि वे दोनों भाग पीठ में जाकर लग जायें। यह उड्डयान बन्ध कहलाता है। पेट को पीछे की ओर आकर्षित करता हुआ नाभि के ऊपर के भाग में आकुंचित करे, यही उड्डीयान बन्ध, जो कि मृत्युरूपी हाथी को वश में करने के लिए सिंह के समान है।

यह श्रेष्ठतम बन्ध दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम खड़े होकर करना चाहिए और दूसरा पद्मासन में किया जाता है।

उड्डयानबन्ध क्रिया की विधि इस प्रकार है–

नित्य प्रातःकाल चार बजे उठकर शौचादि क्रिया व स्नानादि से निवृत्त होकर शान्त व आदर भाव से अपने दोनों पैरों को एक दूसरे से एक या डेढ़ फुट की दूरी रखें एवं अपनी दोनों हथेलियाँ रानों पर सटा कर थोड़ा सा आगे झुक जायें, ताकि गर्दन और कन्धों का पूरा भार दोनों हाथों पर रहे। इसके पश्चात् फेफड़ों को पूर्ण वायुरहित करके, झूठे तौर पर श्वास को ऊपर खींचने जैसी क्रिया करें। अर्थात् श्वास भीतर न जाने पाये। ऐसा करने से महा प्राचीरा ऊँची उठ जायेगी और उदर एक गहरे गड्डे सा परिवर्तित हुआ दिखेगा। पेट जितना मेरुदण्ड से सट जाये उतना ही श्रेष्ठ है। यथा शक्ति जब तक वायु सुखपूर्वक नियन्त्रित की जा सके। नियंत्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बाद गर्दन व कन्धों को पूर्ण शिथिल करें, जिससे धीरे-धीरे फेफड़ों में स्वच्छ वायु परिपूर्ण हो जाए। यह एक उड्डयान हुआ। नये साधक के लिए प्रारम्भ में दस दिन तक एक उड्डयान बन्ध प्राप्त होगा। इसी प्रकार चार या पाँच मास में साधक बन्धों की संख्या सात या आठ तक बढ़ा सकता है–

नित्यं यः कुरुते योगी
चतुर्वारं दिने-दिने।
तस्य नाभेस्तु शुद्धि
साद्येन सिद्धो भवेन्मरुत्।।
षण्मासमभ्यसन्योगी
मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्योदरग्निर्ज्वलति
रस वृद्धिः प्रजायते।।

जो योगी इस बन्ध का नित्य प्रति चार बार अभ्यास करता है, उसके नाभिमण्डल का शोधन हो जाता है और वायु भी सिद्ध हो जाती है। यदि योगी छः महीने तक इस बन्ध के अभ्यास में तत्पर रहता है तो वह अवश्य ही मृत्यु को जीतने में समर्थ होता है और उसके उदर की अग्नि विशेष रूप से प्रदीप्त होती है तथा रस की वृद्धि होने लगती है।

अब इस सोपान का अतिक्रमण हो जाने के पश्चात् मुख्य कर्म 'नौलि' का वर्णन किया जाता है। नौलि–

अमन्द्रावर्तवेगेन तुन्दं

सव्यापसव्यत:।

नतांसो भ्रामयेदेषा

नौलि: सिद्धै: प्रचक्षते।।

योगी अपने कन्धों को नीचा करके बहुत तीव्र जल भँवर के समान वेग से उदर को दायीं व बायीं ओर जोर से घुमावे। इस कर्म को सिद्धों ने नौलि कर्म कहा है।

नौलि का अर्थ होता है–थैली। मनुष्यों के उदर में जो बड़ी आंत है, वह एक थैली के आकार की है। जो कामाद्रि के ऊपर और नाभि के समीप से दोनों ओर स्थापित की हुई है।

नौलि उदर की स्वच्छता के लिए संसार में अद्वितीय क्रिया है जो योगियों की षट्क्रियाओं–नेति, कपाल भाँति, नौलि, धौति, वस्ति और त्राटक में से मुख्य व एक है। नौलि के अभ्यास के पूर्व उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करना इसका प्रथम सोपान है। नौलि का अभ्यास खड़े होकर ही करना चाहिए। नौलि क्रिया सीखने के पूर्व उड्डीयान बन्ध का अच्छी प्रकार से अभ्यास होना अति आवश्यक है। मोटी तोंद वालों को बन्ध में ही एक डेढ़ वर्ष लग सकता है। उड्डीयान बन्ध की सफलता की निशानी यह है कि महा प्राचीरा वक्षःस्थल की ओर ऊपर चढ़ने लगे तो अभ्यासी को समझना चाहिए कि उसे सफलता प्राप्त हो रही है व धीरे–धीरे विकास हो रहा है।

नौलि करने की विधि इस प्रकार है–

दोनों पावों के बीच एक फुट का अन्तर रखें और दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखते हुए, अपने शरीर को थोड़ा सा आगे झुका दीजिए। फुफ्फुसों को वायुरहित कर दें। अब बाह्य कुम्भक की स्थिति में झूठे तौर पर श्वास खींचें (परन्तु श्वास अन्दर प्रवेश न करे) इससे पेट और पृष्ठ प्रकाकार हो उठेंगे। महाप्राचीरा जब ऊपर वक्षःस्थल की ओर चढ़ जाये, तो उस समय धड़ को थोड़ा सा सीधा कर लें और वक्षःस्थल की ओर कुछ खिंचाव देते हुए नल निकालने का प्रयत्न करें। उसके बाद धीरे–धीरे श्वास लें। इस प्रकार अभ्यास करने से नल अपने आप निकल आयेगा। नलों को बाहर निकालने के लिए उचित स्थान पर दबाव देना चाहिए यानी यहाँ से दो नल प्रारम्भ

होते हैं। दबाव देने से नल स्पष्ट रूप से निकल कर दृष्टिगोचर होने लगेंगे तथा उदर की सभी पेशियों में शिथिलता आयेगी।

सबसे प्रथम यह उदर के मध्य में जो नल दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें मध्य नौलि कहा है। नये साधक कुछ महीनों इसी मध्य नौलि का अभ्यास अवश्य करें। इसके पश्चात् नल निकलने की स्थिति में बायें हाथ पर जोर देने से बायीं ओर नौलि आ जायेगी और दाँये हाथ पर जोर देने से दक्षिण नौलि आ जायेगी। इस प्रकार करने से जब मध्य, वाम और दक्षिण–इन तीन नौलियों का अभ्यास द्वारा इन पर पूर्णरूपेण से अधिकार हो जाये तब कुछ महीनों तक इसी पर संतोष करना चाहिए।

इसके पश्चात् नलों को दांये–बांये क्रमानुसार घुमाने का प्रयत्न करना चाहिए। नल घुमाते समय ऐसा अनुभव होता है कि पेट में तरंगें उठ रही हैं। इस एक उड्डीयान बन्ध में सात चक्कर तक देने चाहिए। साढ़े तीन बांये और साढ़े तीन दांये से बराबर घुमाना चाहिए। धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाया भी जा सकता है।

नौलि शरद् ऋतु में सीखना अति उत्तम माना गया है। नौलि सदा नित्य नियम से प्रातःकाल स्वच्छ होकर खाली पेट से ही करें। नौलि करने के बीस मिनट पश्चात् ही कुछ तरल पदार्थ दुग्धादि जलपान के रूप में लें तो उत्तम होगा।

नौलि का दस से पन्द्रह मिनट प्रतिदिन अभ्यास अवश्य करना चाहिए। नौलि करने वालों को विशेषतः दलिया और खिचड़ी खानी चाहिए।

उदर की आभ्यान्तरिक शुद्धि एवं स्वच्छता के लिए उड्डीयान बन्ध एवं नौलि संसार में अद्वितीय क्रियायें हैं।

शारीरिक लाभ के अतिरिक्त अध्यात्मिक लाभ इससे कहीं अधिक प्राप्त होते हैं। नौलि का लाभ योग शास्त्र में इस प्रकार लिखा है–

मन्दाग्निसदीपनपाचनादि
संधापिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च
हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।।

अर्थात् यह नौलि मन्द पड़ी हुई पेट की अग्नि को दीप्त करती है और भोजन किये गये अन्न को पचाती है। आदि पद से मल शुद्धि का होना ग्रहण किया है। हर समय आनन्द देती है और समस्त वात, पित्त, कफ के रोगों को सुखाने वाली है। इसलिए यह नौलि हठयोग की क्रियाओं में सबसे मुख्य है। धौति और वस्ति कर्म नौलि

के बिना नहीं हो सकते। कुंजल और शंख प्रक्षालन आदि कर्म नौलि के बिना अधूरे रहते हैं। बज्रौली तो बिना भली–भाँति नौलि जाने ठीक हो ही नहीं सकती। अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी ने योगाभ्यासियों के लिए कुछ आवश्यक पालनीय नियम बतलाये हैं जिनके पालन करने से अभ्यासी अवश्य ही अपने चरम लक्ष्य को पा सकते हैं। यथा–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य,
जाग्रतो नेव चार्जुनः।।
युक्ताहार विहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य
योगी भवति दुःखहा।।

(गीता अ. 6)

अर्थात् योगाभ्यासी साधक को अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न ही उसको निराहार रहना चाहिए, न बहुत सोना चाहिए और न अधिक जागना ही चाहिए। जिनका आहार–विहार व हर क्रिया–कलाप संयमित है उनकी योग साधना उन्हें सब दुःख द्वन्द्वों से मुक्त करके सुखी बना देती है और वे अपने चरम लक्ष्य को पा जाया करते हैं।

महत्वपूर्ण निषेध–

टी.बी. से पीड़ित व्यक्ति, ह्रदय रोगी, आलसी व अधिक सोने वाला व्यक्ति तथा उच्च रक्तचाप के रोगी व्यक्ति, इनको उड्डीयान बन्ध व नौलि करने का साहस नहीं करना चाहिए। पहिले किसी विशेषज्ञ का परमार्श लेना अति आवश्यक है। 40 वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों को नौलि का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिनको नौलि करते समय कोई पीड़ा प्रतीत होती हो उन्हें भी नौलि नहीं करनी चाहिए। बीड़ी, सिगरेट तम्बाकू व अन्य मादक पदार्थों का सेवन करने वाले व्यक्ति भी नौलि के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते है। झूठ बोलने वाला धूर्त प्राणी किसी भी प्रकार की उत्तम यौगिक क्रियाओं का अधिकारी नहीं हो पाता है। खान–पान की शुद्धि ही योग–विद्या का आधार है।

चण्डीगढ़ में योग प्रचार और श्री गुरु–कृपा की अलौकिक घटनाऐं

(एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा)

प्रतिवर्ष की भांति श्री गुरुदेव जी ने इस वर्ष भी चण्डीगढ़ निवासियों को योगामृत पान कराने की असीम कृपा की। श्री गुरुदेव जी महाराज को कार द्वारा कोलर डिन से चण्डीगढ़ लिवाने के लिए चण्डीगढ़ योग–प्रचार मण्डल के प्रधान श्री प्राणनाथ जी शर्मा पहले ही श्री चरणों में पहुँच गये थे। ज्योंहि श्री गुरुदेव जी की कार सैक्टर 15 में पहुँची वातावरण श्री गुरुदेव जी की जय और प्रभु श्री रामलाल जी की जय–ध्वनि से गुंजायमान हो उठा।

कार से निकल कर श्री गुरुदेव जी ने समस्त उपस्थित शिष्यगण एवं अन्य गण्यमान्य सज्जनों को अपनी वरद हस्त–मुद्रा द्वारा आशीर्वाद दिया। श्री गुरुजी के साथ योगसुधा, संगीत–प्रवीणा भक्ति–रस प्रदायिनी सुश्री उमाजी भी पधारीं और ब्रह्मचारी पूरणचन्द भी साथ आये। श्री गुरुजी के स्वागत के लिए तोरण द्वार सजे हुये थे और बैंड बाजे का भी समुचित प्रबन्ध था।

श्री गुरुजी महाराज एवं सुश्री उमाजी ने तब आश्रम में पदार्पण किया जहाँ आरती–पूजन कार्यक्रम विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ और समस्त गुरुभाई एवं बहन अपने पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव जी महाराज के सान्निध्य को प्राप्त कर कृतार्थ हो गये।

इस बार का चण्डीगढ़ योग–प्रचार कार्यक्रम कई कारणों से विशिष्ट कहा जा सकता है। श्री गुरु–कृपा से योगामृत पान करने के लिए जनता में अपार उत्साह था। श्री महाराज जी के प्रवचन से पूर्व संगीत–सुधा योग–वर्चस्वनी सुश्री उमा जी अपने संगीत माधुर्य से सबके हृदयों को भक्ति–रस से विभोर कर देती थीं। फिर पूज्य श्री महाराज जी लगातार योग के गूढ़ मर्मों को अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जनमानस तक पहुँचाने की कृपा करते थे। मानव देह की दुर्लभता, गर्भोपनिषद् वर्णित मानव–प्रतिज्ञा एवं वैष्णवी माता के सम्पर्क में प्रतिज्ञा विस्मरण, कर्म के संचित, क्रियमाण, प्रारब्ध आदि भेद, कर्म–विपाक द्वारा योनि, आयु भोग का निर्माण आदि कतिपय विषय श्री गुरुदेव ने शिष्यों को समझाये और सबसे बढ़कर श्री महाराज जी ने वे उपाय बताये जिनका अवलम्बन कर मानव एक ऐसे नये प्रारब्ध का निर्माण कर सकता है जिससे उत्तरोत्तर योग मार्ग प्रशस्त होता रहे और मुक्ति–लाभ की क्रिया निरन्तर बिना विघ्न के चलती रहे।

श्री महाराज जी के दिव्य प्रवचनों को सुनने के लिए गुरु भाई बहनें दूर–दूर से आये हुये थे। कुरुक्षेत्र से बहन वेदवती जी भी पधारी थीं और जीन्द से आये श्री जगदीश गर्ग जी भी उपस्थित थे। इनके अतिरिक्त योग मण्डलियाँ निम्न स्थानों से भी आयीं–ताड़वा, सिरसा, कुरुक्षेत्र,

पानीपत, अम्बाला, जगाधरी, रोपड़, लुधियाना, पठानकोट, मण्डी (हिमाचल), कोलर (हिमाचल), कांगड़ा, सहारनपुर (उ. प्र.) आदि।

इस समस्त आगत जन–मंडली ने चण्डीगढ़ के इस वर्ष के प्रचार कार्यक्रम को एक छोटे 'सवाँई कार्यक्रम' का रूप दे दिया था। आये हुए गुरु भाई–बहनों के लिए भोजन और निवास का उचित प्रबन्ध किया गया था।

श्री गुरु महाराज के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए चण्डीगढ़ योग प्रेमियों द्वारा एक अभिनन्दन–पत्र भी श्री गुरु महाराज जी को भेंट किया गया। अभिनन्दन–पत्र प्रस्तुत करने एवं श्री महाराज जी को भेंट करने का दायित्व श्री कुन्दनलाल जी सचदेव उपप्रधान श्री सिद्धगुफा योग प्रचार मण्डल चण्डीगढ़ ने सुचारु रूप से निभाया।

असीम गुरु–कृपा से जीवन–दान

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, इस बार का चण्डीगढ़ कार्यक्रम अद्वितीय कहा जा सकता है। जहाँ पर योग प्रचार कार्यक्रम, संगीत माधुर्य, अपार जन समूह दूरस्थ गुरु–भाईयों का मिलन आदि इस विशिष्टता के कारण कहे जा सकते हैं। यहाँ पर इस वर्ष मुख्य विशिष्टता श्री गुरुदेव जी द्वारा श्री चनन देवी को जीवन–दान देकर स्वास्थ्य प्रदान करना था। यह घटना वास्तव में श्री गुरु–कृपा का एक अद्वितीय उदाहरण है। शिष्यों के लिए श्री महाराज जी के वात्सल्य की भी इससे एक अनोखी झलक मिलती है। इसलिए यह घटना कुछ विस्तार से लिखते हैं–

श्रीमती चननदेवी परम गुरु भक्त देवी हैं और चण्डीगढ़ आश्रम आपके ही घर 3201 सैक्टर 15 में स्थित है। आपके पति श्री रामचन्द्र जी कालिया भी श्री गुरु–चरणों के अनन्य प्रेमी व चण्डीगढ़ के वरिष्ठ गुरु–भाइयों के अग्रगण्य नेता हैं। श्री रामचन्द्र जी कालिया के जन्म–पत्रानुसार श्री चनन देवी जी के जीवन का यह अन्तिम वर्ष था। परन्तु चनन–देवी इस सबकी परवाह न कर सेवा कार्य में निरन्तर मग्न थीं। होनहार बलवान होती है। श्री गुरु महाराज पधार चुके थे। चनन देवी सायंकाल सेवा कार्य करके गुरु–भाईयों के लिए चाय बना रही थीं कि उन्हें छाती एवं गले की पीड़ा होने लगी। साधारण रोग समझकर वे अपने कार्य में लगी रहीं परन्तु नींद न आई और न छाती की पीड़ा ही बन्द हुई।

अगले दिन पीड़ा असह्य हो गई। अन्ततः 27 अक्टूबर 1980 को चननदेवी जी को चण्डीगढ़ की पोस्ट–ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडीसन एण्ड (पी.जी.आई.) में भर्ती करवाया गया जहाँ पर डॉक्टरों ने निर्णय दिया कि उन्हें दिल का गम्भीर दौरा पड़ गया है।

श्रीमती चननदेवी का शरीर शिथिल हो गया एवं गर्मी जाती रही। चेतना भी नहीं थी। सायंकाल पुष्प–प्रसाद से गर्मी लौट आई परन्तु आक्सीजन लगाने के बाद भी होश नहीं आया।

उधर महाराज जी ने एक दम बैठे–बैठे सब भक्तों से कहा कि वह उन्हें लेटने दें और उनके शरीर पर रजाई ओढ़ा दें। ऐसा ही किया गया। श्री महाराज जी आधा घण्टा इसी प्रकार लेटे रहे और फिर पंडाल में आरती के लिए गये।

अस्पताल में मृत्यु से जूझती चननदेवी के शरीर में चेतना लौट आई और स्वास्थ्य में सुधार का मोड़ हो गया। 3 नवम्बर को श्री महाराज जी व सुश्री उमाजी स्वयं अस्पताल पधारे एवं श्री गुरुजी ने चननदेवी को आशीर्वाद दिया। 4 नवम्बर को श्री महाराज जी को भावभीनी विदाई दी गई और सभी प्रसन्न थे।

अस्पताल में दिव्य घटनायें

परन्तु 5 नवम्बर को चननदेवी जी फिर बेहोश हो गयीं एवं अपने मृत सम्बन्धियों के नाम ले–लेकर उनसे बोलने लगीं। श्रीमती चननदेवी जी के सुपुत्र श्री रूपलाल माताजी के पास थे। उन्होंने जल्दी से डॉक्टरों को बुलाया परन्तु श्रीमती चननदेवी बोलती रहीं। उनका वार्तालाप धर्मराज के दूतों से था जो उन्हें खींचकर ले जा रहे थे। माताजी जोर–जोर से कह रही थीं कि उन्हें क्यों खींच रहे हो। धर्मराज से भी माताजी ने कहा कि उन का खाता देखो। जब उसमें कुछ नहीं तो उन्हें क्यों खींच रहे हैं ? तभी अचानक श्रीमती चननदेवी की भस्त्रिका आरम्भ हो गयी। डॉक्टर हैरान थे। तब श्री गुरु महाराज ध्यान में प्रकट हुये और श्रीमती चननदेवी ने बोलकर उन्हें प्रणाम किया। तब श्री गुरु जी ने धर्मराज से इस अनधिकार कार्य के लिए भर्तसना की और तब एकाएक चननदेवी ने आँखें खोल दीं और सबसे बात की।

दूसरी घटना और दिव्य सुगन्ध

दूसरी घटना 8 नवम्बर की है। शाम के 5 बजे थे चननदेवी सोते–सोते बोलने लगीं और अचानक सारा कमरा सुगन्ध से भर गया। दिव्य गन्ध इतनी तेज थी कि बाहर बरामदे में भी फैल गई। डॉक्टर व नर्सें भी कमरे में आ गये। चननदेवी जी ने बोलकर श्री गुरु महाराज व योगिनी सुश्री उमाजी का स्वागत किया व आसन दिये। तब गुरुजी के स्वर में चननदेवी ने कहा–'चननदेवी! तू आरती नहीं करेगी ?' तब चननदेवी ने अपनी उंगली खड़ी की और उसमें से सुगन्ध निकलती रही।

आरती करते–करते चननदेवी जी गुरुमन्त्र भूल गयीं तब श्री गुरु महाराज ने आरती, निर्वाण अष्टक आदि स्त्रोत आगे–आगे बोलकर चननदेवी जी को करवाये। सभी इस अलौकिक घटना पर चकित थे और श्री गुरुदेव जी की शक्ति के आगे नत–मस्तक थे।

अब श्रीमती चननदेवी स्वस्थ हैं और फिरसे आश्रम का कार्य देख रही हैं।

यह है एक भक्त पर भगवान की कृपा। एक श्रद्धालु ह्रदय पर भगवान का वात्सल्य प्रदर्शन। घटना विस्तार से दे दी है ताकि श्री प्रभु–कृपा एवं गुरु–अनुकम्पा का पता सबको लग सके, जिससे सब भाई–बहनें योग–मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होने की प्रेरणा ले सकें।

दुःखालय शाश्वतम्

(श्री सुरेन्द्रबहादुर एम.ए.)

यह संसार शाश्वत दुःख का घर है। जो कुछ भी स्थावर–जंगम रूप दृश्य है वह स्वप्न के समान अनित्य है। मल–मूत्र आदि की थैलियों और नाड़ियों से भरा हुआ यह शरीर केवल अल्पकाल के लिए भोग भोगने के निमित्त प्राप्त हुआ है। यह शरीर सर्वदा स्वस्थ भी नहीं रहता। नाना प्रकार के रोगों से अभिभूत रहता है। केवल रक्त और मांस का बना हुआ यह घृणास्पद शरीर श्वास–प्रश्वास के धागे पर टिका हुआ है जो पता नहीं कब टूट जायेगा। फिर भी विडम्बना यह है कि मनुष्य इस शरीर के सुख के लिए कौन सा निकृष्ट कर्म करने को तत्पर नहीं रहता। यह शरीर चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा मृत्यु। युवकों को बाल्यावस्था तथा वृद्धों को युवावस्था सुखकर प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में उन अवस्थाओं में जीने वाला जीव समान रूप से दुःखी रहता है। मृत्यु के पूर्व की शेष तीनों अवस्थायें समान रूप से दुःख पूर्ण हैं। बाल्यावस्था में असमर्थता, आपत्तियाँ मूकता, तृष्णा, मूढ़ता आदि का ही प्राधान्य रहता है। बालक बड़ों के सामने दीनता, असमर्थता, निर्बलता और परतन्त्रता का अनुभव करके दुःखी होता है। युवावस्था में मनुष्य काम–वासना की पूर्ति एवं धनोपार्जन की चिन्ता में इतना निमज्जित रहता है कि उसे वास्तविक सुख की कल्पना भी नहीं हो सकती। वृद्धावस्था में शरीर शिथिल और निर्बल हो जाता है, इन्द्रियाँ अशक्त हो जाती हैं, वह सर्वदा नाना प्रकार के रोगों से आक्रांत रहने लगता है और अपने को दीन, हीन और निराश्रित अनुभव करने लगता है। इस अवस्था में तृष्णा बढ़ती ही जाती है जो उसकी शारीरिक एवं ऐन्द्रिक असमर्थता के कारण और भी सन्ताप पहुँचाने वाली बन जाती है। वास्तव में इस संसार में सुख नाम की कोई चीज नहीं है। इस जीवन में मनुष्य को कभी–कभी सुख का आभास लग जाता है जिसके पीछे वह निरन्तर दौड़ता रहता है और इसी आशा की दौड़ में वह अपनी अपरिहार्य मृत्यु की ओर से आँखें मूँदे रहता है तथा अपने को इस पृथ्वी का स्थाई निवासी माने रहता है। इसी को महाराज युधिष्ठर ने सबसे महान आश्चर्य की संज्ञा दी है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तहि यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

अर्थात् संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक में जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे सर्वदा जीते रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ?

यह संसार सर्वदा जलते हुए घर के समान है। इसमें सुख और शांति के लिए कहीं भी अवकाश नहीं है। संसार की इसी दुःख रूपता ने बहुत से तत्व विचारकों को निराशावादी बना दिया। जर्मनी के दार्शनिक हार्टमैन ने तो यहाँ तक लिखा है कि–"Not to have been born is the greatest fate and the next best is to die young."

अर्थात् सर्वोत्तम भाग्य तो यही है कि जन्म ही न हो और उसके बाद का सर्वोत्तम भाग्य यह है कि शीघ्र ही मृत्यु हो जाये। लाइबनीज प्रभृति दार्शनिक ने यह स्वीकार किया है कि इस संसार में दुःख, कष्ट और अपूर्णता है जो ईश्वर कृत है। उसका कहना है कि इससे अच्छे संसार का निर्माण ईश्वर कर सकता था किन्तु उसने जान–बूझकर नहीं किया। उसका कहना है कि वैषम्य जीवन का स्वाद है। अब यदि हम मान लें कि ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की तो प्रश्न उठता है कि उसने इस संसार में विषमता की सृष्टि क्यों की ? हम देखते हैं कि कुछ लोग बहुत धनी हैं तो अन्य कुछ निर्धन हैं, कुछ लोग पूर्ण स्वस्थ हैं और कुछ लोग अत्यन्त अस्वस्थ हैं। क्या इससे ईश्वर पर पक्षपात एवं निर्दयता का आरोप नहीं लगता ? इसका उत्तर ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार दिया गया है–

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति।

इस सूत्र पर भाष्य करते हुए स्वामी श्री शंकराचार्य ने लिखा है कि ईश्वर जगत का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर को कारण मानने पर उस पर विषमता तथा निर्दयता का आरोप लगता है। ईश्वर ने किसी को अत्यन्त सुख–भोगी बनाया है, जैसे देवता इत्यादि, किसी को अत्यन्त दुःख–भोक्ता बनाया है, जैसे पशु इत्यादि, किसी को अल्प सुख और अल्प दुःख का भोक्ता बनाया है, जैसे मनुष्य इत्यादि। अतः इस प्रकार की विषम सृष्टि का निर्माण करके ईश्वर साधारण मनुष्य के समान राग–द्वेष से ग्रसित प्रतीत होता है। किन्तु ईश्वर पर वैषम्य (पक्षपात) और निर्दयता का प्रसंग उठ ही नहीं सकता। क्योंकि वह तो सापेक्ष होकर (जीव के कर्मानुसार) सृष्टि की रचना करता है। अतः सृष्टि में वैषम्य के लिए प्राणियों का धर्माधर्म ही कारण है। अर्थात् जीवों का पिछले

जन्मों में किया हुआ कर्म ही विषमता का कारण है। क्योंकि ईश्वर सापेक्ष होकर (जीवों के कर्मों की अपेक्षा से) सृष्टि–रचना करता है, अतः वह पक्षपात और क्रूरता का दोषी नहीं हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार में जो कुछ भी वैषम्य है, जितने भी दुःख अथवा क्लेश हैं वे सब मानव कृत हैं, ईश्वर कृत नहीं। मनुष्य अपने कर्मों के कारण ही बार–बार जन्म लेता है, दुःख और सुख भोगता है तथा बार–बार मृत्यु को प्राप्त होता है। इस भव–चक्र का कारण मनुष्य स्वयं है। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि मनुष्य के वर्तमान जन्म का भोग उसके पिछले जन्मों के कारण है और पिछले जन्मों का भोग उसके भी पूर्व के जन्म के कर्मों के कारण है तो आखिर उसका प्रथम जन्म भी तो कोई रहा होगा और उस जन्म के भोग का कारण क्या रहा होगा ? निश्चय ही कर्म तो नहीं रहा होगा, क्योंकि उसके प्रथम जन्म के पूर्व कोई कर्म नहीं रहा होगा। इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्म–सूत्र में इस प्रकार दिया गया है–

अविभागात् इति चेत् न अनादित्वात्।

यह सृष्टि अनादि है अतः इस प्रकार का प्रश्न करने से प्रश्न में अनवस्था दोष आ जायेगा। न्याय दर्शन में भी कहा गया है–"**पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।**" तथा "**आत्म–नित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः।**" इन सूत्रों पर वात्स्यायन ने भाष्य लिखा है जिसका सार यह है कि मरने पर जो दूसरा जन्म होता है उसे प्रेत्य–भाव कहते हैं। जन्म–मृत्यु का यह प्रवाह अनादि है किन्तु अपवर्ग के पश्चात् इसका अन्त हो जाता है। आत्मा नित्य है। वही नाना प्रकार के शरीरों में जाता है।

मनुष्य के जन्म, भोग तथा उसकी आयु का निर्धारक उसका कर्माशय होता है। कर्माशय का अर्थ है कर्म की वासना। कर्माशय की जड़ क्लेश है। योगदर्शन में कहा गया है–

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।

अर्थात् क्लेश जिसकी जड़ है ऐसे कर्मों की वासना दृष्ट (वर्तमान) तथा अदृष्ट (भावी) जन्मों में भोगने योग्य है। चित्त में क्लेशों के संस्कार विद्यमान रहने के कारण उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते हैं। उन सकाम कर्मों का फल वर्तमान तथा आने वाले जन्मों में भोगना पड़ता है। इन्हीं सकाम कर्मों के फल–भोग के संस्कार को कर्माशय

कहते हैं। उस कर्माशय का फल योग दर्शन में इस प्रकार बतलाया गया है–

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के रहने से उस कर्माशय का फल जाति आयु और भोग होता है। भावी जाति अथवा जन्म का निर्धारण कैसे होता है? इसका समाधान गीता में इस प्रकार किया गया है–

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

हे अर्जुन, यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस–उस को ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है। जीवन में बार–बार लम्बे समय तक जिस भाव का अधिक चिन्तन किया जाता है उसी का दृढ़ अभ्यास हो जाता है और जिस भाव का दृढ़ अभ्यास होता है उसी भाव का अन्तकाल में अनायास ही स्मरण होता है। मृत्यु के समय जिस भाव का चिन्तन होता है, वह सात्त्वि, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है। इन तीनों प्रकार के भावों का फल इस प्रकार होता है–

यदा सत्त्वै प्रवृद्धेतु प्रलयं याति देहमृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिपु जायते।
तथा प्रत्लीनस्त्तर्मास मूढ़योनिषु जायते।।

जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल व दिव्य लोकों को प्राप्त होता है। रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है, तथा तमोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है–

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।

'सत्त्वगुण में स्थित मनुष्य स्वर्ग आदि ऊँचे लोकों को जाते हैं, रजोगुण में स्थित मनुष्य मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में ही रह जाते हैं और तमोगुण में स्थित जघन्य गुण–वृहत्त वाले मनुष्य कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं।'

मनुष्य के समस्त दुःखों की उत्पत्ति उसके कर्मों से होती है। कर्मों की उत्पत्ति अविद्या

अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश–इन पाँच क्लेशों से होती है। वास्तव में अविद्या ही सभी क्लेशों की जननी है। अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है। अविद्या की उत्पत्ति चित्त से होती है। यह चित्त प्रकृति का प्रथम परिणाम है। चित्त की उत्पत्ति का कारण है तीनों गुणों की साम्यावस्था का भंग होना। इस साम्यावस्था के भंग होने का कारण है पुरुष का उसमें प्रतिबिम्ब होना। पुरुष भ्रमवश इस प्रतिबिम्ब को ही अपना स्वरूप मान बैठता है और यहीं से सारे अनर्थों की जड़रूपा प्रकृति का सारा खेल पुरुष के निमित्त आरम्भ हो जाता है। अतः क्लेशों की आत्यांतिक निवृत्ति के लिए पुरुष और प्रकृति का भेदज्ञान (विवेकख्याति) आवश्यक है। विवेक–ख्याति के उदय होने पर गुणों में वितृष्णा रूप पर–वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और इसके परिणाम स्वरूप पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस विवेक-ख्याति को प्राप्त करने के लिए योग ही एक मात्र उपाय है। जिस समय योगी संप्रज्ञात योग की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है उस समय विवेक–ख्याति का उदय होता है। विवेक–प्रज्ञा के प्राप्त होने पर योगी अपने को चित्त से पृथक देखता है और सारे कर्मों को गुणों का व्यापार देखता हुआ उनसे असंग बना रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।

'जिस समय द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणों से परे मुझ परमात्मा को जानता है उस समय वह मेरे स्वरूप (अर्थात् स्वरूपप्रतिष्ठा) को प्राप्त होता है। यह पुरुष शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप इन तीनों गुणों को लांघकर जन्म, मृत्यु, जरा तथा सब प्रकार के दुःखों से छूट कर अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है।'

ऊपर के विवेचनों से यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य के सारे दुःख–भोग उसके स्वयंकृत हैं तथा उनको दूर करने का उपाय भी उसी के हाथ में है। अतः अपना परम कल्याण चाहने वाले मनुष्य को पवित्र योगमार्ग पर चलना चाहिए तथा जीवन को सात्त्विक विचारों व कर्मों के अनुसार चलाना चाहिए।

सुदीर्घ-जीवी और स्वस्थ रहने के उपाय

(श्री जी. एल. मेहरा)

(1) **प्रातःकाल जागना**—ब्राह्ममुहूर्त में बिस्तर से उठ जावें और उदय होते सूर्य के पाँच-दस मिनट दर्शन करते रहें।

(2) **उषःपान**—प्रातः शौच जाने से पहले बासी पानी पीवें। यह पानी रात को ताँबे के पात्र में रखा हो तो अच्छा है। अति शीत में इसे मामूली गर्म करके पीवें।

(3) **शौच**—मलमूत्र का त्याग प्रातः जागते ही ठीक प्रकार हो जाना चाहिए। रोगों की जननी कब्ज को अपनी प्रकृति अनुकूल उपचार से शीघ्र हटा लेना उचित है।

(4) **दन्तधावन**—कीकर, फूला या नीम आदि की दातुन अथवा मंजन या पेस्ट ब्रुश से मुँह के अन्दर का मैल, कफ व बलगम निवृत्त कर लें, इससे दाँत साफ व मजबूत रहते हैं।

(5) **मालिश**—सरसों आदि के तेल से सारे शरीर पर मालिश किया करें। शीतकाल में धूप में मालिश करना अधिक लाभदायक है। जब कभी सारे शरीर पर न हो सके तो पैरों के तलों पर जरूर कर लें।

(6) **व्यायाम**—शुद्ध वायु दण्ड, बैठक, कुश्ती, योगासन करें, तैरें या टेनिस आदि खेलें अथवा लम्बी सैर किया करें।

(7) **स्नान**—शरीर को साफ व सम्बल बनाये रखने के लिये नित्य प्रातः स्नान करें। गर्मियों में सायंकाल भी कर लेना चाहिए।

(8) **संध्या प्राणायाम**—शुद्ध वायुमण्डल में प्राणायाम अथवा दीर्घ-निश्वास से मन को वश में करके दोनों संधिसमय संध्या के मन्त्रों से व गायत्री जाप करते हुए परमात्मा से सुख शान्ति, स्वास्थ्य, दीर्घ आयु व सद्बुद्धि की याचना किया करें।

(9) **हवन**—हर रोज श्रेष्ठतम कर्म अग्निहोत्र करके वातावरण पवित्र, जलवायु स्वास्थ्यप्रद रोगनाशक बनायें और प्राणिमात्र का उपचार करें।

(10) **पहिराव**—सदा सादा सुथरे, ऋतु अनुकूल, आरामदेह और प्रसन्नताप्रद वस्त्र पहिनें।

(11) **आहार**—हितभुक्-मितभुक्-ऋतभुक् अर्थात् हितकारक, ठीक मात्रा में और मौसम व समय अनुकूल खावें-पीवें। मादक व अभक्ष्य पदार्थ स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं और आयु क्षीण करते हैं। औषधियाँ खाते रहने का स्वभाव न बनावें बल्कि "जब तक काम चले

परहेज व गिजा से, तब तक चाहिए, बचना दवा से''।

(12) **निद्रा**–नींद व विश्राम शरीर के लिए आवश्यक है। इनसे शारीरिक बैटरी चार्ज होती है। यदि कभी नींद न आए तो लेट कर शरीर को ढीला और मन को निर्विषय करके विश्राम ही कर लेवें।

(13) **ब्रह्मचर्य**–आहार व निद्रा की तरह ब्रह्मचर्य भी शरीर का आधार स्तम्भ है। वीर्यरक्षा दीर्घ जीवन और वीर्यनाश शीघ्र मृत्यु के हेतु हैं, अतः ब्रह्मचर्य का सदा पालन करें। याद रखें, ''विषय का विषयधर जब डसे ओम् जड़ी को चाव। है नाग दमन की औषधि ढूँढन दूर न जाव।।''

(14) **निवास**–शुद्ध वातावरण में और खुले व बिना रोक–टोक धूप व हवादार स्थान में ही रहना स्वास्थ्यप्रद है।

(15) **धनोपार्जन**–वेद–आदेशानुसार स्थाम पतयो रयीणाम्''। 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' अर्थात् धनवान् बनो पर पराए धन का लोभ कभी न करो। ईमानदारी व स्वास्थ्य अनुकूल परिश्रम से कमाया हुआ धन ही सुखशान्तिदायक होता है। बेईमानी की कमाई अन्त में दुःखदाई होती है।

(16) **ऋतुचर्या**–वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर सभी ऋतुओं में अनुकूल रहन–सहन, खान–पान व पहराव सदा रखें।

(17) **वेगनिरोध**–मलमूत्र, अपान, वीर्य, डकार, उल्टी, उबासी, छींक, दौड़ने आदि से उत्पन्न सांस, आंसू, नींद, भूख और प्यास, ये तेरह स्वाभाविक वेग हैं, इन्हें कभी न रोकें। इनके रोकने से रोग उत्पन्न होते हैं।

(18) **विष–निःसारण**–शरीर के अन्दर जो स्वाभाविक विष उत्पन्न होता रहता है उसे योग्य चिकित्सक की सम्मति से जुलाव, अनीमा व उल्टी द्वारा कभी–कभी निकालते रहें और मानसिक दोष व द्वेष स्वाध्याय व सत्संग से सदा निवारण करते रहें।

(19) **स्वभाव**–बुराइयों का ज्ञान होते हुए भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारवश हानिकर कर्म–मांस, मदिरा, सिगरेट आदि का सेवन व बुरे लोगों की संगति करना, स्वाभाविक वेगों को रोकना, अधिक बोलना, चिन्ताग्रस्त रहना बुद्धि दोष हैं। इनसे सदा बचने और प्रसन्न चित्त रहने का स्वभाव बनाये रखें।

(20) **आशीर्वाद**–माता–पिता, आचार्य व पूज्य वृद्धों तथा महात्माओं की सेवा–सुश्रुषा करते हुए इनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त करते रहें। इनका आशीर्वाद और ईश्वर–भक्ति सुदीर्घ–जीवी होने और स्वस्थ रहने के मुख्य उपाय हैं।

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।
योगेश्वर प्रभु रामलाल के पद नखा हृदय धरूँ।।

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज ने, कितने पतितों को तारा।
जिसने भी यहाँ शीश झुकाया, प्रभुजी का मिला सहारा।।
अभय बनाया पावन-रज ने, महिमा कहाँ लौं कहूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

जीवन की बुझती ज्योति, यहाँ आकर ज्वलित हुई है।
मुरझी हुई जीवन आशायें, इस आँगन में महक उठी है।।
श्री गुरुवर के " रज प्रसाद " की सुध ही न बिसरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

मानव सब सारे प्रयत्नों को कर, हाथ नहीं कुछ पाता है।
तब प्रभु के चरणों की पावन-रज से, आशा की किरण जगाता है।।
प्रभु रामलाल की अमर धरोहर, अपने शीश धरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 OCTOBER 2023

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्ध्या तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।

जो एकान्त में पड़े हुए दूसरे के स्वर्ण को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि के द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है उस नर श्रेष्ठ को तुम विष्णु का भक्त जानो।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. न. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) रासलाल शर्मा